405/19.12.2016

शोधार्थी - **अंजु रानी**

शोध-निर्देशक - डॉ. चंद्रदेव यादव

विभाग - हिन्दी

विषय - शिवदान सिंह चौहान की आलोचना-दृष्टि का अध्ययन

शोध-सार

अन्य गद्य विधाओं के अविर्भाव के साथ 'भारतेन्दु युग' में आलोचना का भी आरंभ हुआ। हालांकि भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी साहित्य में काव्यशास्त्रीय पद्धति की आलोचना दिखाई देती है। इसके अतंर्गत संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों के अनुकरण की परम्परा ही मुख्य है। संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों का अनुकरण करते हुए रीतिकाल या उससे पूर्व के अनेक आचार्यों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की है, परन्तु एक बंधी-बँधाई परम्परा का अनुकरण करती हुई रीतिकालीन आलोचना रस, अलंकार और नायिका भेद जैसी संकीर्ण श्रृंखला में बंधी हुई है। रीतिकाल की बजाय भक्तिकाल में आधुनिक 'आलोचना' के कुछ मजबूत आधार दिखाई पड़ते हैं। भक्तिकाल में 'टीका' और 'वार्ताओं' के नाम से लिखी गयी रचनाएँ रीतिकालीन रीतिग्रंथों के समीप दिखायी पड़ती हैं। आधुनिक समीक्षा, जिसके स्वरूप निर्धारण में 'प्रगातिशील आलोचना' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, की नींव भारतेन्दु-युग में पड़ी।

शिवदान सिंह चौहान एक जनवादी विचारक थे। हर समस्या पर वे एक आम आदमी की दृष्टि से विचार करते थे। चौहान जी का अधिकांश लेखन मानवद्रोही प्रवृत्तियों के विरोध में ही लिखा गया। साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सामंतवाद और इनकी सहायक शक्तियों के खिलाफ उन्होंने आजीवन संघर्ष किया।

प्रत्येक आलोचक की तरह शिवदान सिंह चौहान की भी इच्छा एक ऐसे समन्वित आलोचना-दृष्टि के निर्माण की, जिसके द्वारा प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य का श्रेष्ठ मूल्यांकन संभव हो सके। वे तत्कालीन आलोचना जगत में व्याप्त अराजकता से बेहद त्रस्त थे। वर्गीकरण पारंपरिक दृष्टि, राष्ट्रीय अवसरवादिता और सापेक्षतामूलक तर्क प्रणाली वाली तत्कालीन आलोचना पद्धतियों द्वारा निर्मित साहित्यिक वातावरण से शिवदान सिंह चौहान बहुत अधिक नाराज थे। वे साहित्य लेखन को एक पवित्र कर्म मानते थे और आलोचना को केवल रचना की व्याख्या करने वाली मूल्यांकनपरक प्रक्रिया तक सीमित नहीं करना चाहते थे। उनके लिए आलोचना-कर्म चेतना के संस्कार से लेकर व्यापक मानव-मूल्यों के निर्धारण तक विस्तृत था। आलोचकों के महत्वपूर्ण दायित्व के प्रति उन्होंने बार-बार सचेत किया। वे साहित्य समीक्षा को एक 'स्वतंत्र विज्ञान' के रूप में विकसित करना चाहते थे। वास्तव में शिवदान सिंह चौहान

ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के श्रेष्ठ समन्वय द्वारा साहित्यालोचना की एक ऐसी पद्धति विकसित करना चाहते थे जो साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्त जीवन को संपूर्णता में पहचान सके।

प्रगतिशील आलोचना के सैद्धांतिक आधारों को स्पष्ट करने के साथ-साथ शिवदान सिंह चौहान ने उसके आधार पर प्रगतिशील आलोचना का स्वरूप निर्धारण भी किया। उन्होंने भारतीयता के नाम पर संकीर्ण राष्ट्रवाद को प्रचारित करने वाली प्रवृत्ति का विरोध किया। परंपरा के मूल्यांकन के आधारों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने इन इनके माध्यम से प्रगतिशील आलोचना को एक 'समन्वित आलोचना दृष्टि' के रूप में विकसित करने का प्रयास किया। निस्संदेह शिवदान सिंह चौहान एक मार्क्सवादी आलोचक हैं।

शिवदान सिंह चौहान हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना के केन्द्र में रहे हैं। प्रगतिशील आलोचना के उद्‌भव और विकास का सम्पूर्ण इतिहास चौहान जी के इर्द-गिर्द घूमता दिखता है। चौहान जी भारत के उन युवा उत्साही आलोचकों में थे जिन्होंने प्रगतिवादी विचारों से भारतीय समाज को परिचित कराया। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की विभिन्न इकाइयां गठित करने और 'हंस' तथा 'आलोचना' पत्रिकाएं निकालने के साथ साथ अपने आलेखों और पुस्तकों के द्वारा प्रगतिशील आलोचना को एक लम्बे समय तक आगे बढ़ाया।

शिवदान सिंह चौहान हिन्दी के उन आलोचकों में हैं, जिन्होंने प्रगतिशील आलोचना पर सबसे अधिक लिखा है। यदि कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनका समस्त लेखन ही प्रगतिशील आलोचना पर केन्द्रित है। साहित्यिक लेखन की शुरुआत चौहान जी ने प्रगतिशील विचारों से साहित्यिक जगत और आम जनता को परिचित कराने लिए किया था और वे स्वयं भी इन विचारों से जीवन भर जुड़े रहे। प्रगतिशील लेखन में छठवें दशक में आयी मतवादी संकीर्णता से खिन्न चौहान जी ने लेखन-कर्म को त्याग देना स्वीकार किया परंतु किसी विचारधारा के साथ जुड़ना पसंद नहीं किया।

शिवदान सिंह चौहान की आलोचनात्मक सक्रियता का दौर बहुत छोटा है। उसकी कालावधि पाँचवें दशक के उत्तरार्द्ध से शुरु होकर छठे दशक का अंत होने तक समाप्त हो जाती है। परन्तु शिवदान सिंह चौहान ने जितना भी लिखा उसके माध्यम से वे व्यावहारिक आलोचना का 'मॉडल' तैयार करना चाहते थे। उन्होंने जितना कुछ भी लिखा 'समग्रता', 'वास्तविकता' और 'स्पष्टता' के मूल मानदंड पर लिखा।